आराधना- पाठ

कविश्री द्यानतराय

(स्नान करते समय बोलना चाहिए)

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुनिरन करौं।
सूरि-गुरु-मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।
मैं धर्म करुणामय जु चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्रज्ञान-विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना ॥1॥
चौबीस श्रीजिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसे।
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, वंदतैं पातक नसे॥
गिरनार शिखर समेद चाहूँ, चंपापुरी पावापुरी।
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजें भ्रम जुरी॥2॥
नवतत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट्द्रव्य-गुन-परजाय चाहूँ, ठीक जासों भय हरौं॥
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव न चाहूँ कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा॥3॥
सम्यक्त-दर्शन-ज्ञान-चारित, सदा चाहूँ भावसों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा-हरख-उछाव सों॥

सोलह जु कारन दुःख निवारण, सदा चाहूँ प्रीतिसों।
मैं नित अठाई-पर्व चाहूँ, महामंगल-रीति सों।।4।।
अनुयोग चारों सदा चाहूँ, आदि-अन्त निवाह-सों।।
पाये धरम के चार चाहूँ, चित्त अधिक उछाह सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भवन-बस लाहो लहूँ।
आराधना मैं चारि चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।।5।।
भावना-बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं।।
प्रतिमा-दिगंबर सदा चाहूँ, ध्यान-आसन सोहना।
वसुकर्मतैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोह ना।।6।।
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिन ही सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, अवर-आरंभ परिहरौं।।
इस दुक्ख पंचमकाल-माहीं, सुकुल-श्रावक मैं लह्यो।
अरु महाव्रत धरि क्यो नाहीं, निबल-तन मैंने गह्यो।।7।।
आराधना उत्तम सदा, चाहूँ सुनो जिनरायजी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत', दया करना न्याय जी।।
वसुकर्म-नाश विकास, ज्ञान-प्रकाश मोको दीजिये।
करि सुगति-गमन समाधिमरन, सुभक्ति-चरनन दीजिये।।8।।

***

समस्त कलाओं में धर्मकला ही श्रेष्ठ है; क्योंकि वह जीवन जीने की कला सिखाती है और आत्मा के दर्शन कराती है।

श्रावक-प्रतिक्रमण (लघु)

नमः सिद्धेभ्यः। नमः सिद्धेभ्यः। नमः सिद्धेभ्यः।

चिदानन्दैकरूपाय जिनाय परमात्मने।

परमात्मप्रकाशाय नित्यं सिद्धात्मने नमः।

अर्थः- उन श्री जिनेन्द्र-परमात्मा सिद्धात्मा को नित्य-नमस्कार है, जो निदानंदरूप हैं (अष्ट कर्मों को जीत चुके हैं), परमात्मा-स्वरूप हैं और परमात्मा-तत्त्व को प्रकाशित करनेवाले हैं।

पॉच मिथ्यात्व, बारह अव्रत, पन्द्रह योग, पच्चीस कषाय-इसप्रकार सत्तावान-आस्रव का पाप लगा हो, मेरा वह सब पाप मिथ्या होवे।

नित्य-निगोद सात लाख, इतर-निगोद सात लाख, पृथ्वीकाय सात लाख, जलकाय सात लाख, अग्निकाय सात लाख, वायुकाय सात लाख, वनस्पतिकाय दस लाख, दो-इन्द्रिय दो लाख, तीन-इन्द्रिय दो लाख, चार-इन्द्रिय दो लाख, नरकगति चार लाख, तिर्यंचगति चार लाख, देवगति चार लाख, मनुष्यगति चौदह लाख-ऐसी चौरासी लाख; मातापक्ष में चौरासी लाख योनियाँ, एवं पितापक्ष में एक सौ साढ़े निन्याणवे लाख कुल कोटि, सूक्ष्म-बादर, पर्याप्त-अपर्याप्त भेदरूप जो किसी जीव की विराधना की हो, मेरा वह सब पप मिथ्या होवे।

तीन दंड, तीन शल्य, तीन गारव, तीन मूढ़ता, चार आर्त्तध्यान, चार रौद्रध्यान, चार विकथा-इन सबका पाप लगा हो, मेरा वह सब पप मिथ्या होवे।

व्रत में, उपवास में अतिक्रम, व्यतिक्रम, अतिचार, अनाचार का पाप लगा हो, मेरा वह सब पाप मिथ्या होवे।

पंच मिथ्यात्व, पंच स्थावर, छह त्रसघात, सप्त-व्यसन, सप्त-भय, आठ मद, आठ मूलगुण, दस प्रकार के बहिरंग-परिग्रह, चौदह प्रकार के अन्तरंग-परिग्रह सम्बंधी पाप किये हों, मेरे वे सब पाप मिथ्या होवें। पन्द्रह प्रमाद, सम्यक्त्वहीन परिणाम का पाप लगा हो, मेरा वह सब पाप मिथ्या होवे। हास्यादि, विनोदादि दुष्परिणाम का, दुराचार, कुचेष्टा का पाप लगा हो, मेरा वह सब पाप मिथ्या होवे।

हिलते, डोलते, दौड़ते-चलते, सोते-बैठते, देखे, बिना देखे, जाने-अनजाने, सूक्ष्म व बादर जीवों को दबाया हो, डराया हो, छेदा हो, भेदा हो, दुःखी किया हो, मन-वचन-काय कृत मेरा वह सब पाप मिथ्या हो।

मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका-रूप चतुर्विध-संघ की, सच्चे देव-शास्त्र-गुरु की निन्दा कर अविनय का पाप किया हो, मेरा सब पाप मिथ्या होवे। निर्माल्य-द्रव्य का पाप लगा हो, मेरा वह सब पाप मिथ्या होवे। मन का दस, वचन का दस, काया का बारह-ऐसे बत्तीस प्रकार के दोष सामयिक में दोष लगो हों, मेरा वे सब पाप मिथ्या होवे। पाँच इन्द्रियों व छठे मन से जाने-अनजाने जो पाप लगा हो, मेरा वह सब पाप मिथ्या होवे।

मेरा किसी के साथ वैर-विरोध, राग-द्वेष, मान, माया, लोभ, निन्दा नहीं, समस्त जीवों के प्रति मेरी उत्तम-क्षमा है।

मेरे कर्मों का क्षय हो, मुझे समाधिमरण प्राप्त हो, मुझे चारों गतियों के दुःखों से मुक्तिफल मिले।

शांतिः! शांतिः! शांतिः!

***